ऑक्सफैम इंडिया नीति संक्षिप्त

अंक 3, नवंबर 2012

ऑक्सफैम इंडिया
OXFAM India
Demanding Rights for All

सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाओं की जरूरत

हमारे देश में सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाओं के सवाल पर चल रही मौजूदा बहस में बहुत कुछ दांव पर लगा हुआ है।[1] आने वाले महीनों में ये तय हो जाएगा कि सरकार सबको स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने के लिए एक सक्रिय भूमिका निभाने को तैयार है या वही हालात बने रहेंगे जो अभी तक रहे हैं। इस बहस में विभिन्न पक्षों ने बुनियादी सवालों पर बहुत तीखी मुद्रा अख्तियार कर ली है। एक सार्वभौमिक स्वास्थ्य तंत्र के लिए धन की व्यवस्था कैसे होगी? सरकारी और निजी स्वास्थ्य प्रदाताओं की भूमिका क्या हो? निजी स्वास्थ्य प्रदाताओं पर नियमन की क्या व्यवस्था होगी? इन सवालों पर जो भी फैसले लिए जाएंगे वे इस बात पर गहरा असर छोड़ेंगे कि सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाओं का सपना एक हकीकत बन पाएगा या ज्यादातर नागरिक खस्ता हाल स्वास्थ्य सेवाओं के लिए भारी-भरकम कीमत अदा करने पर मजबूर होते रहेंगे।

सारांश

सभी नागरिकों को ह्स्तरीय, किफायती, जवाबदेह और समुचित स्वास्थ्य सेवाएं मिलनी चाहिए... और सरकार की जिम्मेदारी है कि वह इस बात का जिम्मा ले और ये सेवाएं मुहैया कराए।[2] कहने का मतलब यह है कि सरकार को बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं की एक ऐसी व्यवस्था उपलब्ध करानी चाहिए जो मुख्य बीमारियों के लिए प्रभावी और किफायती उपचार का आश्वासन दे सके।[3]

सार्वभौमिक स्वास्थ्य सुविधाओं के विचार को निर्णय लेने वालों की जमात में काफी बल मिल चुका है इसलिए प्रभावशाली संबंधित पक्षों की पोजीशंस इसके क्रियान्वयन के मुद्दे पर आकर आपस में टकराने लगी हैं। क्या स्वास्थ्य सेवाओं का प्राथमिक दायित्व सरकार के ऊपर होना चाहिए या उसकी भूमिका केवल निजी स्वास्थ्य प्रदाताओं पर अंकुश लगाने तक सीमित होनी चाहिए? हमें स्वास्थ्य सुविधाओं की कर-आधारित व्यवस्था की तरफ बढ़ना चाहिए या फिर बीमा आधारित स्वास्थ्य तंत्र की ओर बढ़ना चाहिए? योजना आयोग तथा उसकी ओर से गठित किए गए उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समूह, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, प्राइवेट लॉबियों और नागर समाज संगठनों ने इन नीतिगत सवालों पर परस्पर विरोधी पोजीशंस ली हुई हैं। आने वाले महीनों में इन सवालों पर जो भी फैसले लिए जाएंगे उनसे यह तय हो जाएगा कि सभी के लिए स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने का आश्वासन साकार रूप ले पाएगा या नहीं।

भारत के स्वास्थ्य संकेतकों को देख कर भली-भांति समझा जा सकता है कि हमारा क्या कुछ दांव पर लगा हुआ है। भारत में जीवन प्रत्याशा यानी औसत उम्र 65 साल है जो कि हमारे पड़ोसी श्रीलंका (75 वर्ष) तथा बांग्लादेश और नेपाल (69 वर्ष) से भी कम है।[4] हमारे जैसी ही आर्थिक स्थिति से गुजर रहे दूसरे देशों की तुलना में भी हमारी औसत उम्र काफी पीछे है। सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर तबकों में तो स्वास्थ्य की स्थिति बेहद दर्दनाक है : अनुसूचित जनजातियों का बहुलांश गरीबी की रेखा से नीचे है और इस समुदाय की जीवन प्रत्याशा राष्ट्रीय औसत से भी आठ साल कम है। और तो और, पिछले 20 साल के दौरान तो अनुसचित जनजातियों की जीवन प्रत्याशा में मामूली गिरावट ही आई है।[5] पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर और प्रसूता मृत्यु दर क्रमशः प्रति 1,000 में 50 और प्रति 100,000 जीवित प्रसवों में 212 है जो कि दूसरे देशों के मुकाबले अभी भी ज्यादा है।[6] देश के सबसे गरीब 20 प्रतिशत तबके और सबसे संपन्न तबके के बीच यह फर्क और भी तीखा है। सबसे निचले तबके में शिशु मृत्यु दर सबसे अमीर तबके की शिशु मृत्यु दर से दोगुनी है।

ये संकेतक भारत की स्वास्थ्य नीति की बहुत गंभीर दुर्बलताओं की ओर संकेत करते हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य तंत्र में इस उपेक्षा के लक्षण साफ देखे जा सकते हैं। बुनियादी स्वास्थ्य ढांचा लगातार कमजोर होता जा रहा है। कर्मचारियों का भारी अभाव है और निशुल्क दवाइयां विरले ही कहीं मिल पाती है। ढीले-ढाले नियमों के तहत काम कर रहे निजी स्वास्थ्य प्रदाताओं ने इस शून्य का जमकर लाभ उठाया है और वे अकसर संदेहास्पद स्तर की स्वास्थ्य सेवाएं भी इतनी भारी-भरकम कीमत पर मुहैया करा रहे हैं जो गरीबों की पहुंच से बाहर है। ये हालात बेदखली के एक कठोर चक्र को जन्म दे रहे हैं : समाज के जो तबके आर्थिक विकास की दौड़ में पिछड़ गए हैं उनकी न केवल स्वास्थ्य की स्थिति दयनीय है बल्कि उनके सामने स्वास्थ्य संबंधी खतरे भी बहुत बड़े हैं।

मौजूदा बहस में शामिल सभी संबंधित पक्षों में इस बात पर सहमति है कि नीतिगत स्तर पर बदलाव बहुत जरूरी है। हाल के सालों में सरकार ने अपनी चरमराती सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था को मजबूती देने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं - राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और हाल ही में स्वीकृत राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के अलावा सब्सिडी आधारित बीमा योजनाएं और गरीबों के लिए नकद उत्प्रेरक जैसी कई योजनाएं चलाई जा रही हैं। बेशक, ये सभी कार्यक्रम एक नेकनीयत के साथ शुरू किए गए हैं लेकिन वे भी एक समग्र रूपरेखा की जरूरत को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। योजना आयोग ने इसी मुद्दे पर एक उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समूह का गठन किया था। इस समूह की रिपोर्ट में कई दूरगामी सुधारों का सुझाव दिया गया है। उसने सुझाव दिया है कि सरकारी सेवा प्रदाताओं को केंद्रीय भूमिका दी जाए और तदनुरूप सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था को मजबूती दी जाए। विशेष समूह ने कर-आधारित सरकारी वित्तपोषण का आह्वान किया है; प्रयोक्ता शुल्क खत्म करने की सिफारिश की है और ये सुझाव दिया है कि एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य पैकेज तय किया जाए जिसमें सभी आधारभूत स्वास्थ्य आवश्यकताओं को शामिल किया जाए।

विशेषज्ञ समूह की रिपोर्ट आने के बाद सरकार ने जो नीतिगत दिशा अपनाई है वह इन सिफारिशों के विपरीत दिखाई देती है। सरकार के मॉडल में निजी सेवा प्रदाताओं के साथ साझेदारी पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है तथा गरीबों की पहुंच बढ़ाने वाले लक्ष्य केंद्रित हस्तक्षेपों की वकालत की गई है। लेकिन सरकार ने प्रयोक्ता शुल्क खत्म नहीं किया है। स्वास्थ्य के मद में होने वाला सरकारी खर्चा 2010-2011 में जीडीपी का एक प्रतिशत था[7] जाकि सरकार की वित्तीय प्रतिबद्धता की दृष्टि से बहुत कम है। यह 11वीं पंचवर्षीय योजना में तय किए गए 2 प्रतिशत जीडीपी और 12वीं पंचवर्षीय योजना में तय किए गए जीडीपी के 2.5 प्रतिशत के लक्ष्य से बहुत पीछे है। देश की उपेक्षित सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में किसी भी तरह के सार्थक सुधारों के लिए जरूरी साधनों की दृष्टि से ये रकम निश्चय ही बहुत कम है।

देश की स्वास्थ्य नीति पर हो रही इतनी तीखी बहस के प्रसंग में ऑक्सफेम इंडिया समावेशी स्वास्थ्य कवरेज के तीन बुनियादी सिद्धांतों पर जोर देना चाहता है। ये ऐसे सिद्धांत हैं जो भारत और दुनिया भर में स्वास्थ्य सुविधाओं की मौजूदा स्थिति से मिले अनुभवों पर आधारित हैं। जब तक इन सिद्धांतों

को केंद्र में रख कर एक समग्र स्वास्थ्य व्यवस्था तय नहीं की जाएगी तब तक सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच का आश्वासन हकीकत का रूप नहीं ले पाएगा।

सिफारिशें

1. आधारभूत स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने का मुख्य दायित्व सरकार के ऊपर हो।
2. सभी आधारभूत स्वास्थ्य खर्चों के लिए सार्वजनिक कर-आधारित वित्तपोषण व्यवस्था अपनायी जाए।
3. रोगियों के अधिकारों को समग्र नियमन के केंद्र में रख कर और निगरानी व शिकायतों के निपटारे की एक व्यापक व्यवस्था विकसित करके स्वास्थ्य प्रदाताओं का सामाजिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाए।

1. आधारभूत स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने का मुख्य दायित्व सरकार के ऊपर हो।

भारत के सार्वजनिक स्वास्थ्य तंत्र की दयनीय दशा सार्वजनिक-निजी साझेदारी के हिमायतियों के लिए एक बहुत बढ़िया दलील बन गई है। उनका दावा है कि 82 प्रतिशत मरीजों का इलाज निजी स्वास्थ्य प्रदाताओं द्वारा किया जा रहा है[8] जो कि इस क्षेत्र की सफलता का सबूत है और सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था की विफलता का स्पष्ट परिणाम है। उनका कहना है कि अगर सरकार देश की स्वास्थ्य समस्या को कारगर ढंग से हल करना चाहती है तो उसे निजी क्षेत्रा की इस ताकत का फायदा उठाना चाहिए। हमारी राय में, इस दलील के विरुद्ध कम से कम तीन बहुत स्पष्ट तर्क दिए जा सकते हैं।

पहली बात ये है कि निजी अस्पताल उन इलाकों और ऐसे इलाज पर ही जोर देते हैं जिनसे उन्हें सबसे ज्यादा मुनाफा मिलता है। परिणामस्वरूप, स्वास्थ्य सुविधाओं में निवेश मुख्य रूप से शहरों तक सीमित रहा है। प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं की उपेक्षा हुई है। प्राथमिक सुविधाओं की बजाय ज्यादातर निवेश महंगी द्वितीयक और तृतीयक चिकित्सा सुविधाओं में जा रहा है। दो आंकड़ों से इस रुझान को काफी हद तक समझा जा सकता है : 1986 से 2006 के बीच ग्रामीण इलाकों में प्रति 10,000 आबादी पर सरकारी डॉक्टरों की संख्या 0.6 से भी गिर कर केवल 0.3 पर जा पहुंची जबकि डब्लयूएचओ द्वारा प्रति 10,000 लोगों पर डॉक्टरों की तय संख्या 23 रखी गई है।[9] इसी अवधि में प्रति 1,000 आबादी पर अस्पतालों में बिस्तरों की संख्या केवल 0.2 है जबकि डब्ल्यूएचओ ने प्रति 1,000 आबादी के लिए 2.5 प्रतिशत बिस्तरों का प्रावधान किया है। कुल मिलाकर, ग्रामीण भारत में अस्पतालों और डॉक्टरों तक भौतिक पहुंच एक बहुत बड़ी रुकावट बनी हुई है।[10]

दूसरी बात, लोक स्वास्थ्य नीतियां तभी कारगर होती हैं जब उन्हें बहुत बड़े पैमाने पर और व्यवस्थित ढंग से लागू किया जाता है।[11] उदाहरण के लिए, टीकाकरण कार्यक्रम की सफलता के लिए जरूरी है कि इसे आबादी के बहुत बड़े हिस्से में चलाया जाए। यही बात मलेरिया और तपेदिक जैसी बहुत सारी दूसरी संक्रामक बीमारियों के बारे में भी सच है। इसका मतलब यह है कि अगर आप स्वास्थ्य तंत्रा को बहुत सारे निजी संस्थानों के बीच छितरा देते हैं तो स्वास्थ्य के क्षेत्रा में व्यापक सफलताओं की संभावना कम रह जाती है।

तीसरी बात यह है कि जहां सरकार के पास निजी क्षेत्र पर सख्त अंकुश रखने की क्षमता या इच्छाशक्ति ही नहीं है वहां निजी क्षेत्र पर निर्भरता से उत्तरदायित्व के संदर्भ में गंभीर मुद्दे खड़े होते हैं। इस बात को अगले भाग में निजी क्षेत्र द्वारा की गई धांधलियों और गड़बड़ियों के उल्लेख के आधाार पर समझा जा सकता है।

निजी स्वास्थ्य तंत्र की सीमाओं को रेखांकित करते हुए उपरोक्त तीनों तर्क सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे और कार्मिक बल में इजाफे को प्राथमिकता देने की जरूरत को निविर्वाद रूप से स्पष्ट कर देते हैं। आर्थिक साधनों और नीतियों की दिशा भी इसी आधार पर तय होनी चाहिए। व्यावहारिक धरातल पर इसका मतलब यह है कि उपलब्ध संसाधनों और स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं को देखते हुए सरकार को निरोधक, उपचारक और पुनर्वास स्वास्थ्य सेवाओं का एक न्यूनतम पैकेज मुहैया कराने का जिम्मा अपने ऊपर लेना चाहिए और इस पैकेज में सभी आम बीमारियों को शामिल किया जाना चाहिए और उनकी रोकथाम के लिए बेहद कारगर, किफायती कार्यक्रम तैयार करना चाहिए।[12]

खरीद संबंधी मुद्दों पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। दवाइयां खरीदना गरीब रोगियों के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है क्योंकि नि:शुल्क दवाइयां विरले ही कहीं मिल पाती है।[13] सार्वजनिक रूप से मिलने वाली दवाइयां एक तो दुर्लभ हैं और दूसरी तरफ सेवा प्रदाताओं द्वारा की जा रही व्यापक धांधलियों से उनका अभाव और भी गंभीर रूप ले लेता है। जरूरत इस बात की है कि इस समस्या पर प्राथमिकता के आधार पर प्रहार किया जाए। सरकार को सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज के अंतर्गत स्वास्थ्य सेवाओं का एक आधारभूत पैकेज तैयार करना चाहिए और इस पैकेज की लागत बहुत ज्यादा न हो, इसके लिए एक उचित खरीद नीति तय करनी चाहिए : यानी, कीमतें नियंत्रण में हों; जैनेरिक दवाइयों का इस्तेमाल अनिवार्य किया जाए; और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर सरकार की पोजीशन भारत के जैनेरिक औषधि उत्पादक उद्योग के पक्ष में होनी चाहिए।

2. सभी अनिवार्य स्वास्थ्य व्ययों के लिए सार्वजनिक कर – आधारित वित्तपोषण की व्यवस्था की जाए।

जीडीपी के 1 प्रतिशत खर्चे के लिहाज से स्वास्थ्य पर भारत सरकार का सार्वजनिक व्यय दुनिया भर में सबसे कम खर्चा करने वाले देशों में आता है। इतना कम खर्चा करने वाले देशों में भारत उप-सहारा अफ्रीका के बेहद गरीब देशों और अफगानिस्तान, हैती, अजरबेजान व जॉर्जिया जैसे देशों के समतुल्य पहुंच जाता है।[14] इसके विपरीत, डब्ल्यूएचओ का अनुमान है कि निम्न-मध्य आय देशों में आधारभूत स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया कराने की औसत लागत जीडीपी के 6 प्रतिशत के आसपास जरूर होनी चाहिए।[15] स्वास्थ्य पर होने वाले कुल व्यय की बाकी कमी लोग अपनी जेब से पूरी करते हैं जो जीडीपी का 4.5 प्रतिशत बैठती है। इलाज पर होने वाला 70 प्रतिशत से ज्यादा खर्चा इलाज के दौरान होने वाले भुगतानों के रूप में अदा होता है और इसका लगभग 80 प्रतिशत आउटपेशेंट उपचार तथा सबसे मुख्य रूप से दवाइयों पर खर्च होता है।[16]

इस स्थिति से व्यक्तिगत जिंदगियों पर नाटकीय असर पड़ रहे हैं। केवल स्वास्थ्य संबंधी खर्चों के कारण गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली आबादी की संख्या का प्रतिशत पिछले सालों के दौरान लगातार बढ़ता जा रहा है। इस संबंध में सबसे ताजा अनुमान 2005 के हैं। उस समय ये इजाफा प्रति वर्ष 6.2 प्रतिशत आंका गया था।[17] राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान द्वारा किए गए 2004 के सर्वेक्षण के अनुसार 40 प्रतिशत से ज्यादा आबादी को इलाज के लिए या तो कर्जे लेने पड़ते हैं या अपनी संपत्ति बेचनी पड़ती है। ताजा शोधों में तो किसानों द्वारा आत्महत्याओं और परिवार में लंबी बीमारियों के बीच एक और परेशान करने वाला संबंध सामने आया है : आत्महत्या करने वाले हर दो किसानों में से लगभग एक किसान ऐसा था जिसके परिवार में कोई न कोई गंभीर रूप से बीमार था।[18]

सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज की अनुमानित लागत जीडीपी के 4 से 6 प्रतिशत के बीच पड़ती है।[19] हालांकि ये रकम काफी बड़ी है लेकिन यह वित्तीय प्रतिबद्धता साकार करना पूरी तरह संभव भी है : न केवल स्वास्थ्य के मद में भारत का सरकारी व्यय दुनिया भर में सबसे कम व्यय करने वाले देशों के आसपास पड़ता है बल्कि भारत का सकल कर-जीडीपी अनुपात भी 15.5 प्रतिशत है जो जी-20 देशों में दूसरा सबसे कम अनुपात है। जी-20 देशों में इससे कम अनुपात केवल मेक्सिको का रह जाता है।[20] इसके विपरीत, ओईसीडी देशों में औसत राशन 33.8 प्रतिशत है।[21] प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर रियायतों के मद में सरकार की आय में जो कमी आती है वह जीडीपी का लगभग 6 प्रतिशत बैठती है[22] – इतनी राशि सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज की सारी लागतों की भरपाई करने के लिए काफी है।

स्वास्थ्य के लिए धन जुटाने के वैकल्पिक उपायों – जैसे प्रयोक्ता शुल्क – का देश के सामाजिक यथार्थ को ध्यान में रखते हुए बहुत अहतियात से मूल्यांकन किया जाना चाहिए। प्रयोक्ता शुल्कों को अकसर सरकारी

सेवा प्रदाताओं के लिए स्वायत्त आय जुटाने, अनावश्यक मांग पर अंकुश लगाने और गरीबों को रियायत देने का एक कारगर तरीका बताया जाता रहा है। वास्तविकता इससे काफी दूर है। सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में ईलाज के लिए आने वाले ज्यादातर मरीज गरीब होते हैं। फलस्वरूप, इस विकल्प की आर्थिक व्यावहारिकता पर काफी मुश्किल पैदा हो जाती है। जहां उत्तरदायित्व अभी भी एक बहुत बड़ा सवाल है, ऐसे संदर्भ में गरीबों को चुनिंदा ढंग से छूट देने की व्यवस्था भ्रष्टाचार और भेदभाव का दरवाजा खोल देती है। गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों के लिए चलायी जा रही दूसरी योजनाएं भी यही दिखाती हैं कि सरकार के पास इन दुरुपयोगों पर अंकुश लगाने की संस्थागत सामर्थ्य नहीं है। इन निष्कर्षों के आधार पर स्पष्ट माना जा सकता है कि प्रयोक्ता शुल्क को खत्म करना कितना जरूरी है।

उपलब्ध साक्ष्य मुख्य रूप से बीमा योजनाओं पर आधारित मॉडल की भी कलई खोल देते हैं। निजी सेवा प्रदाता या तो सस्ते की बजाय महंगे इलाज को प्राथमिकता देते हैं या फर्जी इलाज के नाम पर बीमा कंपनियों से प्रतिपूर्ति (रीइम्बर्समेंट) की उम्मीद में इलाज की लागत अनावश्यक रूप से बढ़ा देते हैं। उदाहरण के लिए, गरीबों को सब्सिडीयुक्त स्वास्थ्य बीमा सुविधा प्रदान करने वाली राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना की लोकप्रियता के बावजूद इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि इस योजना के प्रसार के साथ इसके दुरुपयोग की समस्या भी फैलती गई है।[23] आउटपेशेंट उपचार पर मरीजों की जब से होने वाले भारी-भरकम खर्चे का एक मतलब ये है कि केवल अस्पताल के खर्चे को कवर करने वाला बीमा तंत्र देश भर में निःशुल्क आधारभूत स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने वाले तंत्र का स्थान नहीं ले सकता। अल्पावधि में बीमा आधारित मॉडल का क्रियान्वयन आसान साबित हो सकता है लेकिन एक उत्तरदायी, सक्रिय सार्वजनिक स्वास्थ्य तंत्र के दीर्घकालिक फायदे इस फटाफट समाधान कके मुकाबले बहुत भारी पड़ते हैं।

इन खामियों के बावजूद, सरकार द्वारा गरीबों के लिए चलाई जा रही सामाजिक बीमा योजनाएं सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज की ओर बढ़ने में एक योगदान दे सकती हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य तंत्र के सुदृढ़ीकरण में अभी काफी समय लगेगा और केंद्र एवं राज्य स्तर पर राजनीतिक इच्छाशक्ति जगाने का संघर्ष भी बहुत लंबा है : ऐसे में सामाजिक बीमा इस संक्रमण को आसान बना सकता है और ये सुनिश्चित कर सकता है कि गरीबों को अविलंब स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच मिलने लगे। फिर भी, अंतिम उद्देश्य यही होना चाहिए कि हम कर-आधारित सरकारी सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज के क्रियान्वयन की तरफ बढ़ें और सामाजिक बीमे को भी इसी व्यवस्था में समेकित किया जाए।

नकद उत्प्रेरकों और नकद भुगतान (कैश ट्रांसफर) पर दिनोंदिन जो जोर दिया जा रहा है वह भी एक चिंताजनक रुझान है। स्वास्थ्य संस्थानों में बच्चों को जन्म देने वाली सभी महिलाओं को नकद सहायता देने के लिए चलाई गई जननी सुरक्षा योजना के अनुभव इस तरह की योजनाओं के दुधारी स्वरूप को स्पष्ट कर देते हैं : बेशक स्वास्थ्य संस्थानों में होने वाले प्रसवों की संख्या बढ़ी है लेकिन ये कहना मुश्किल है कि इस योजना की वजह से प्रसव पूर्व और प्रसवोपरांत मृत्यु दर में भी कोई गिरावट आ पाई है।[24] इस योजना में धांधलियों के मामले भी बड़े पैमाने पर सामने आते रहे हैं। जहां उत्तरदायित्व की व्यवस्था बेहद कमजोर है, ऐसे हालात में नकद उत्प्रेरक और नकद भुगतान की व्यवस्था का बहुत अहतियात से इस्तेमाल करना जरूरी है। इससे भी ज्यादा खतरनाक बात ये है कि ऐसे विकल्प देश भर में सार्वजनिक डिलीवरी व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के एक ज्यादा सार्थक कार्यभार से ध्यान भटका देते हैं।

3. रोगियों के अधिकारों को समग्र नियमन के केंद्र में रख कर और निगरानी व शिकायतों के निपटारे की एक व्यापक व्यवस्था विकसित करके स्वास्थ्य प्रदाताओं का सामाजिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाए।

भारत का स्वास्थ्य तंत्र गैर-जवाबदेही के लिए बदनाम रहा है। दवाइयों/उपचार के अनावश्यक और बेतुके इस्तेमाल की समस्या चौतरफा है। ऐसे अस्पतालों का अनुपात दो में एक से भी कम रहा है जहां कम से कम एक योग्य डॉक्टर हो।[25] ग्रामीण इलाकों में, जहां चिकित्साकर्मियों की उपलब्धता और भी कम है वहां अकुशल डॉक्टर ही असंख्य बीमारियों का इलाज कर रहे हैं।

निजी क्षेत्र पर अंकुश और उसके नियमन की व्यवस्था व्यवहारतः नदारद है : 29 में से 16 राज्यों में ऐसे कानून ही नहीं हैं जो निजी क्लीनिकों को पंजीकरण के लिए बाध्य कर सकें।[26] क्लीनिकल ऐस्टेबलिशमेंट एक्ट, 2010 जैसे केंद्रीय कानूनों या राज्यवार नर्सिंग होम नियमन जैसे प्रस्तावों का विरोध इतना तीखा रहा है कि बहुत सारे राज्यों में इन कानूनों को मंजूरी ही नहीं मिल पाई है। जिन राज्यों में मंजूरी मिली भी है वहां भी उन्हें विरले ही कहीं लागू किया जा सका है। टैक्स कटौती, अनुदानों के हस्तांतरण और मिट्टी के मोल मिली जमीन जैसी विविध प्रकार की सरकारी रियायतों के बावजूद निजी अस्पताल समाज के प्रति अपने दायित्वों का विरले ही कभी सम्मान करते हैं। उदाहरण के लिए, गरीब मरीजों के लिए निःशुल्क बिस्तरों के अनिवार्य कोटे की व्यवस्था का खुलेआम उल्लंघन होता है।[27] सार्वजनिक सेवा प्रदाताओं में भी उत्तरदायित्व का अभाव है : डॉक्टरों की गैरहाजिरी, दवाइयों की चोरी, लोगों से बेमानी शुल्क वसूल करना और खास सामाजिक समूहों के साथ भेदभाव जैसी समस्याएं अपवाद नहीं बल्कि आम समस्या बन गई है।

स्वास्थ्य प्रदाताओं, औषधि निर्माताओं और विक्रेताओं के बीच हितों का तालमेल गड़बड़ियों का एक और बहुत बड़ा स्रोत है : ज्यादातर अस्पताल – जिनमें निजी और सरकारी, दोनों शामिल हैं – महंगी पेटेंटशुदा दवाइयों की ज्यादा हिमायत करते हैं जबकि स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने सरकारी अस्पतालों में जैनेरिक दवाइयों के इस्तेमाल का स्पष्ट दिशानिर्देश दिया हुआ है।[28] पेटेंटशुदा दवाइयों के पक्ष में यह झुकाव ऐसे दौर में सामने आ रहा है जब जैनेरिक दवाइयां बनाने वाली कंपनियों का ऐसे बहुराष्ट्रीय निगमों में विलय होता जा रहा है जो पेटेंटशुदा दवाइयों का ही कारोबार करते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं और दवाइयों के निजी कारोबारियों ने जबर्दस्त ताकतवर लॉबियां बना ली हैं। नीतिगत फैसलों में उनका दखल ऐसी आर्थिक नीतियों के रूप में साफ देखा जा सकता है जो भारत के जैनेरिक औषधि उद्योग को दिनोंदिन खत्म करती जा रही हैं। इन तमाम कारकों की वजह से इलाज की कीमतों में नाटकीय इजाफा हुआ है।

इस क्षेत्र के संवेदनशील स्वरूप और मरीज तथा डॉक्टर के बीच सूचनाओं की अपरिहार्य असमानता को ध्यान में रखते हुए हमें बहुत अहतियात से कदम उठाने होंगे। हमें नियमन व्यवस्था को और मजबूत करना होगा : सरकारी व निजी स्वास्थ्य प्रदाताओं के लिए गुणवत्ता और औचित्य के मानकों तथा निजी प्रदाताओं द्वारा उपचार की लागतों को परिभाषित व निर्धारित करने के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश होने चाहिए; क्लीनिकल रेग्यूलेशन ऐक्ट जैसे मौजूदा कानूनों को अविलंब लागू किया जाना चाहिए।

रोगियों के अधिकारों को उत्तरदायित्व की एक भरोसेमंद व्यवस्था के केंद्र में रखना जरूरी है। शिकायतों के निपटारे की प्रणाली केवल उपभोक्ता अधिकारों की बजाय इन अधिकारों के इर्द-गिर्द केंद्रित होनी चाहिए। सेवाओं की गुणवत्ता सुधारने और रोगियों के जहन में इन सेवाओं की छवि बदलने के लिए सामुदायिक ऑडिट और निगरानी जैसे प्रावधान भी काफी कारगर साबित हुए हैं[29] : इन्हें सबके लिए स्तरीय सेवाएं मुहैया कराने वाले स्वास्थ्य तंत्र के विकास की चेष्टाओं का एक अभिन्न हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

नोट्स

1. इस ब्रीफ का फोकस मौजूदा नीतिगत बहसों के संदर्भ में स्वास्थ्य तंत्र पर है। परंतु, ऑक्सफैम इंडिया स्वास्थ्य कवरेज की एक समग्र दृष्टि अपनाने, पोषण व स्वच्छता जैसे पहलुओं को संबोधित करने और स्वास्थ्य के व्यापक सामाजिक निर्धारकों के महत्व को भली-भांति समझता है।
2. (एचएलईजी) उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समूह (2011), हरिपोर्ट ऑन यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज फॉर इंडियाह्, भारत सरकार, दिल्ली, पृष्ठ 8, http://planningcommission.nic.in/reports/genrep/rep_uhc0812.pdf, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
3. उपरोक्त, पृष्ठ 16.

4. विश्व बैंक संकेतक, जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, http://data.worldbank.org/indicator/SP.DYN.LE00.IN, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
5. एस के मोहंती, एस राम (2010), ह्लाइफ एक्सपेक्टेंसी ऐट बर्थ अमंग सोशल ऐण्ड इकोनॉमिक ग्रुप्स इन इंडियाह्, मुंबई : इंटरनैशनल इंस्टीट्यूट फॉर पापुलेशन साईंस, http://www.iipsindia.org/pdf/RB.13:20पिसम:20वित:20uploading.pdf, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
6. भारत सरकार (2011), ह्फैमिली वेलफेयर स्टेटिस्टिक्स इन इंडियाह्, दिल्ली, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, पृष्ठ 10, http://mohfw.nic.in/WriteReadData/l892s/972971120FW%20Statistics%202011%20Revised%2031%2010%2011.pdf, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
7. सीबीजीए (2012), ह्रिस्पॉंस टू दि यूनियन बजटह्, दिल्ली : सेंटर फॉर बजट ऐण्ड गवर्नेंस एकाउंटेबिल्टी, पृष्ठ 29, http://www.cbgaindia.org/publications_responses_to_union_budgets.php, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
8. ए मेरिअट (2009), 'ब्लाइंड ऑप्टिमिज़्म', ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफैम इंटरनैशनल, पृष्ठ 3, http://www.oxfam.org/sites/www.oxfam.org/files/bp125-blind.optimism-0902.pdf, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
9. भारत सरकार के सेंट्रल ब्यूरो ऑफ हेल्थ इंटेलीजेंस के आंकड़ों पर आधारितद्ध उद्धृत : मीता, राजीवलोचन (2010), ह्इनिइक्वेलिटीज इन हेल्थ, एग्रेरियन डिस्ट्रेस ऐण्ड ए पॉलिसी अवॉइडेंसह्, ऊपर उ्त, पृष्ठ 41(डब्ल्यूएचओ (2012), ह्मेज़रिंग सर्विस अवेलेबिलिटी ऐण्ड रेडीनेसह्, जिनेवा : विश्व स्वास्थ्य संगठन http://www.who.int/healthinfo/systems/SARA_ServiceAvailabilityIndicators.pdf, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
10. के. यादव, पी. जरहयान, वी. गुप्ता, सी. एस. पांडव (2009), ह्रीवाइटेलाइजिंग रूरल हेल्थकेयर डिलीवरी : कैन रूरल हेल्थ प्रेक्टीशनर बी दि आंसर?ह इंडिया जरनल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन 34(1) पृष्ठ 3-5.
11. इस तर्क के लिए देखें : जे सैक्स (2012), ह्अचीविंग यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज इन लो इनकम सेटिंग्सह् दि लांसेट (380), पृष्ठ 944-7.
12. यह तर्क उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समूह द्वारा संस्तुत राष्ट्रीय स्वास्थ्य पैकेज के अनुरूप है। एचएलईजी (2011), ह्रिपोर्ट ऑन यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज फॉर इंडियाह्, ऊपर उद्धृत, पृष्ठ 16.
13. मरीजों की जेब से होने वाले खर्चे में से 74 प्रतिशत खर्चा दवाइयों पर होता है। एचएलईजी (2011), ह्रिपोर्ट ऑन यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज फॉर इंडियाह्, ऊपर उद्धृत, पृष्ठ 28.
14. विश्व बैंक के आंकड़े : लोक स्वास्थ्य व्यय, http://data.worldbank.org/indicator/SH.XPD.PUBL/countries, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
15. डी बी इवान्स, आर इलोवायनियो, जी हम्फीज़ (2010) ह्हेल्थ सिस्टम फाइनेंसिंग, दि पाथ टू यूनिवर्सल कवरेज,ह् जिनेवा : विश्व स्वास्थ्य संगठन, पृष्ठ 15 http://www.who.int/whr/2010/en/index.html, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
16. उपरोक्त।
17. पी. बर्मन, आर आहूजा, एल. भंडारी (2010), ह्दि इम्पावरिशिंग इफैक्ट्स ऑफ हेल्थ केयर पेमेंट्स इन इंडिया : न्यू एविडेंस ऐण्ड मेथडॉलॉजी, इकोनोमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली (ग्स्ट रू 16), पृष्ठ 65-71.
18. मीता, राजीवलोचन, (2010), ह्इनिक्वेलिटीज इन हेल्थ, एग्रेरियन डिस्ट्रेस, ऐण्ड ए पॉलिसी अवाइडेंसह्, इकोनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली (ग्स्टप् रू 43), पृष्ठ 41-47.
19. आधारभूत स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने वाले देशों का अंतर्राष्ट्रीय औसत जीडीपी के 5 से 6 प्रतिशत के बीच होता है। अर्न्स्ट एवं यंग द्वारा फेडरेशन ऑफ इंडियन चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स ऐण्ड इंडस्ट्री (फिक्की) के सहयोग से किए गए अध्ययन में यह व्यय जीडीपी के 3.5 से 4.5 प्रतिशत के बीच बताया गया है लेकिन उन्होंने स्वीकार किया है कि इस तरह के सीमित सार्वजनिक व्यय से लोगों द्वारा किए जाने वाले व्यय में केवल 20-30 प्रतिशत की गिरावट ही आ पाएगी। डी बी इवान्स, आर इलोवायनियो, जी हम्फीज़ (2010) ह्हेल्थ सिस्टम फाइनेंसिंग, दि पाथ टू यूनिवर्सल कवरेज,ह् जिनेवा : विश्व स्वास्थ्य संगठन, पृष्ठ ग्ट, अर्न्स्ट ऐण्ड यंग (2012), ह्हेल्थ कवर फॉर इंडिया : डीमिस्टीफाइंग फाइनेंसिंग नीड्सह्, नई दिल्ली : फिक्की
20. पी. प्रकाश, ह्कम्पेरिजन ऑफ टेक्स रेजीम्स एक्रॉस जी-20 कंट्रीज : फोकसिंग ऑन प्रॉपर्टी वेल्थ ऐण्ड इनहेरिटेंस टैक्सह्, दिल्ली : सेंटर फॉर बजट गवर्नेंस ऐण्ड एकाउंटेबिल्टी, ऑक्सफैम इंडिया द्वारा समर्थित, शीघ्र प्रकाश्य।
21. ओईसीडी आंकड़े, सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में कर राजस्व : http://www.oecd.org/tax/taxpolicyanalysis/oecdtaxdatabase.htm#A_RevenueStatistics, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
22. इन सूचनाओं पर आधारित : भारत सरकार (2012), ह्बजट 2012-2013, स्टेटमेंट ऑफ रेवेन्यू फॉरगोनह्, दिल्ली : वित्त मंत्रालय, http://indiabudget.nic.in/ub2012-13/statrevfor/annex12.pdf, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
23. वी. वार्ष्णेय, ए. गुप्ता, ए. पल्लवी (2012), ह्यूनिवर्सल हेल्थ स्केयरह्, डाउन टू अर्थ। http://www.downtoearth.org.in/content/universalhealth-scare, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
24. एस. मजूमदार, ए. मिल्स, टी पावेल-जेक्सन (2011), ह्फाइनेंशियल इन्सेंटिव्ज़ इन हेल्थ : न्यू एविडेंस फॅम इंडियाज़ जननी सुरक्षा योजनाह्, http://www.herc.ox.ac.uk/people/tpowelljackson/financial%20 incentives%20in%20health, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
25. ग्रामीण राजस्थान में लगभग 40 प्रतिशत निजी डॉक्टरों के पास मेडिकल डिग्री नहीं थी और लगभग 20 प्रतिशत ने तो दसवीं तक की भी पढ़ाई पूरी नहीं की थी। ए. बनर्जी, ए. डेटन, इ डफलो (2003), ह्हेल्थकेयर डिलीवरी इन रूरल राजस्थानह्, इकोनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली (39) : पृष्ठ 944-49.
26. एस. नंदराज (2012), ह्अनरेग्यूलेटेड ऐण्ड अनएकाउंटेबल : प्राइवेट हेल्थ प्रोवाइडर्सह्, इकोनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली, ग्स्टप् (4), पृष्ठ 12-17.
27. आर. बिष्ट, ए. प्रकाश, ए. वीरानी (2011), ह्पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप इन मेडिकल केयर : ए केस स्टडी ऑफ ए हॉस्पिटलह्, दिल्ली : इंस्टीट्यूट ऑफ ह्यूमन डेवलेपमेंट, ऑक्सफेम इंडिया द्वारा समर्थित।
28. आर. सेनगुप्ता (2011), ह्अनहोली एलायंसेज़ इन हेल्थकेयर सर्विसेज़ह्, दिल्ली : सेंटर फॉर कम्पीटीशन इनवेस्टमेंट ऐण्ड इकोनॉमिक रेग्यूलेशन, ऑक्सफैम इंडिया द्वारा समर्थित। http://www.cuts-ccier.org/cohed/pdf/Unholy_Alliances_in_Healthcare_Services-COHED.pdf, पर उपलब्ध, अक्तूबर 2012 में देखा।
29 ए. शुक्ला, डी. काकड़े, के. स्कॉट (2011) ह्कम्यूनिटी मॉनिटरिंग ऑफ रूरल हेल्थ सर्विसेज़ इन महाराष्ट्राह्, इकोनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली, XLVI (30), पृष्ठ 78-85.

ऑक्सफेम इंडिया नवंबर, 2012

यह पॉलिसी ब्रीफ लूसी ड्यूबॉश, रिसर्च मैनेजर, ऑक्सफेम इंडिया द्वारा धनंजय काकड़े, प्रोग्राम कोऑर्डिनेटर-हेल्थ, दीपक ज़ेवियर, एसेंशियल सर्विसेज़ लीड स्पेशलिस्ट, अविनाश कुमार, डायरेक्टर-पॉलिसी, कैम्पेन ऐण्ड रिसर्च, शीरीन नसीम, संजय सुमन एवं संजीता गावरी, प्रोग्राम ऑफिसर्स-एसेंशियल सर्विसेज़ की मदद से लिखा गया है।

यह प्रकाशन कॉपीराइट के अधीन है लेकिन इसके पाठ का एडवोकेसी, अभियान, शिक्षा व शोध कार्यों के लिए निःशुल्क प्रयोग किया जा सकता है बशर्ते स्रोत का पूरा उल्लेख किया जाए। कॉपीराइट धारक निवेदन करते हैं कि इस प्रकाशन की सामग्री के किसी भी तरह के इस्तेमाल के बारे में उन्हें सूचित जरूर किया जाए ताकि प्रभाव आकलन में मदद मिले। किसी भी अन्य परिस्थिति में इस सामग्री की नकल या प्रयोग के लिए अनुमति लेना अनिवार्य है। ई-मेल : policy@oxfamindia.org/

ऑक्सफैम इंडिया

ऑक्सफैम इंडिया एक पूर्णतः स्वतंत्र भारतीय संगठन है और यह 17 संगठनों के एक अंतर्राष्ट्रीय परिसंघ का सदस्य है। ऑक्सफैम संगठन अधिकार आधारित संगठन होते हैं जो जमीनी प्रयासों को स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक नीतिगत घटनाक्रमों के साथ जोड़कर गरीबी और अन्याय के खिलाफ काम करते हैं।

ऑक्सफैम इंडिया, चौथा व पांचवा तल, श्रीराम भारतीय कला केन्द्र, 1, कॉपरनिकस मार्ग, नई दिल्ली-110001.
फोन : 91 (0) 11 4653 8000; www.oxfamindia.org
अपनी टिप्पणियां और प्रश्न हमें यहां भेजें : policy@oxfamindia.org; और जानकारियों के लिए हमारी वेबसाइट www.oxfamindia.org पर जाएं।